अब निश्चय सम्यक्त्व का स्वरूप कहते हैं..... सत्य दर्शन, सम्यग्दर्शन जो आत्मा का पूर्ण निर्विकल्प वस्तु, उसका जो अनुभव, उसमें होनेवाली प्रतीति — ऐसा जो निश्चयसम्यग्दर्शन है, उसकी व्याख्या है। आहाहा!

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यांतरेभ्यः पृथक्।
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयं
तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसंततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः ॥ ६ ॥

'न' का अर्थ हमें हो है। 'न' का अर्थ नकार नहीं, 'न' का अर्थ हमें हो। हमें नव तत्त्व की परिपाटी छोड़कर एक भगवान आत्मा प्राप्त हो। आहाहा! क्योंकि नवतत्त्व का अनादि अभ्यास, वह मिथ्यात्व है। एक स्वरूप जो चैतन्य निर्विकल्प वस्तुमात्र को छोड़कर अनादि का, नौ प्रकार के तत्त्वों का अनुभव वह मिथ्यात्वभाव है। मोक्षमार्गप्रकाशक में तो कहा है कि नव तत्त्व का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है, वह तो दूसरी बात है। वहाँ नव तत्त्व में एक वचन है, एकरूप आत्मा को जानता है, उसमें नौ तत्त्व की श्रद्धा, उसमें साथ आ जाती है। स्व का पूर्ण स्वरूप निर्विकल्प, निर्विकल्प अभेद ज्ञानघन वस्तु का अनुभव होने पर, सम्यग्दर्शन होने पर उसमें दूसरे तत्त्व नहीं — ऐसा अन्दर ज्ञान होकर श्रद्धा आ जाती है, इतनी बात। वहाँ एक वचन है; और यह नौ तो अनेक प्रकार है। नौ के अनेक प्रकार का अनुभव मिथ्यात्व है और नौ का एकरूप जो अभ्यास, स्वरूपसन्मुख की दृष्टि होकर, आठ उसमें नहीं — ऐसा जो श्रद्धासहित ज्ञान होता है, उसे नौ तत्त्व की श्रद्धा का सम्यग्दर्शन कहा है। अरे! ऐसी बात, भाई! मूल बात ऐसी कठिन, अपरिचित, अभ्यास नहीं।

इसलिए यहाँ कहते हैं यह **आत्मानः** श्लोकार्थ - **इस आत्मा को 'अस्य आत्मनः'** आत्मा की मौजूदगी निर्विकल्पस्वरूप, आहाहा! ऐसा सिद्ध किया पहले। **'अस्य आत्मनः'** निर्विकल्प चैतन्यमात्र प्रभु — ऐसा जो आत्मा... आहाहा! **अन्य द्रव्यों से पृथक् देखना (श्रद्धान करना)....** **'अस्य आत्मनः'** निर्विकल्प विज्ञानघन प्रभु, यह अस्ति से बात की; और **अन्य द्रव्य से पृथक् देखना,** यह पर से नास्ति। आहाहा! है? **'अस्य आत्मनः'** यह तो अध्यात्म के मन्त्र हैं, प्रभु! यह कोई साधारण बात — कथा-वार्ता नहीं है। आहाहा!

भगवान आत्मा, वस्तुरूप से ज्ञायकभावरूप से निर्विकल्प अभेदस्वरूप से जो वस्तु है, उसे **'अस्य आत्मनः' इस आत्मा....** ऐसा कहा है। आहाहा! ऐसे आत्मा को **'यद् इह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक् दर्शनम्' अन्य द्रव्यों से पृथक् 'यद् इह'** इसे इसके

द्रव्यान्तर से अन्य... आहाहा! राग और नौ तत्त्व का भेद भी अन्य द्रव्य है, कहते हैं और तीर्थंकरदेव, देव-गुरु भी अन्य द्रव्य है; उनकी श्रद्धा आदि है, वह भी अन्य द्रव्य है — उन अन्य '**द्रव्यान्तरेभ्यो:**' अपने द्रव्य से अन्य द्रव्य, उससे पृथक्। है? आहाहा! अन्य द्रव्य से जुदा अर्थात् पृथक्। **दर्शनम्** देखना अर्थात् श्रद्धा करना। आहाहा!

रागादि के भेद और नव तत्त्व के जो भेद, वे सब परद्रव्य हैं। आहाहा! उनसे पृथक् भगवान आत्मा '**अस्य आत्मा**' पूर्ण निर्विकल्प विज्ञानघन को अन्य द्रव्यों से पृथक् श्रद्धा करना। है? उसका नाम **सम्यग्दर्शन है...** सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

श्रोता : गुरु तो महान उपकारी है, उन्हें तो पृथक् तो कैसे कहा जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : उनसे पृथक्, वाणी और गुरु, देव वे अन्य द्रव्य हैं; वे तो अन्य द्रव्य हैं परन्तु उनकी मान्यता का जो भाव है, वह राग भी अन्य द्रव्य है। आहाहा!

भाई! अभी तो लोगों को मूल चीज कठिन हो गयी है। सत्य बात को मिथ्या ठहराना और मिथ्या को सत्य ठहराना (— ऐसा हो गया है)। आहाहा! '**अस्य आत्मा**' निर्विकल्प विज्ञानघन जो तत्त्व-वस्तु, उसे अन्य द्रव्य, उससे अन्य द्रव्य... **द्रव्यान्तर** है न? द्रव्यान्तर अर्थात् अपने द्रव्य से अन्य द्रव्य... आहाहा! '**अस्य आत्मा**' यह स्वद्रव्य हुआ और इसे **द्रव्यान्तरेभ्य:...** अपने से जितने पृथक् पुण्य और पाप, राग, दया, दान, काम, क्रोध, या देव-गुरु-शास्त्र आदि या नव तत्त्व के भेद का भाव, वह भी अन्य द्रव्य में जाता है। आहाहा! इसमें है या नहीं, देखो न?

श्रोता : घर छोड़कर दूर-दूर से यहाँ आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने छोड़ा है घर? घर किसे कहना? घर था कब वहाँ? ग्वालियर में घर है? आहाहा! घर तो यहाँ '**अस्य आत्मन:**' वह घर है। आहाहा! भजन में नहीं आया? 'अब हम कबहूँ न निजघर आये' 'अब हम कबहूँ न निजघर आये, पर घर भ्रमत नाम अनेक धराये।' मैं क्रोधी, मैं रागी, मैं पुण्यवन्त, मैं लक्ष्मीवन्त, मैं स्त्रीवाला, परिवारवाला - ऐसे अनेक नाम अज्ञानपने धराये हैं, परन्तु कभी इस निजघर। '**अस्य आत्मन:**' जहाँ अस्य आत्मन: निर्विकल्प विज्ञानघन निजघर (में नहीं आया) आहाहा! कहो देवीलालजी! ऐसा काम है। बापू! क्या हो?

इसके ज्ञान में पहले ऐसा निर्णय तो करे, अनुभव बाद में। आहाहा! इसके विकल्पसहित के निर्णय में भी ऐसा परम सत्य जो द्रव्य कायम निर्विकल्प विज्ञानघन (है), वह अन्य द्रव्यों से पृथक् है, उसके भेदों से भी वह पृथक् है। आहाहा! पर्याय के जो भेद हैं, उससे भी अभेद वस्तु पृथक् है। भाई! यह तो वीतरागमार्ग है, बापू! यह कोई कल्पित आर-पार से कहा वह नहीं। भाई! आहाहा! अरे...रे! चौरासी लाख योनियों में जन्म-मरण करके एक-एक योनि में अनन्त अवतार किये। इस अवतार के दुःख सुने, आहाहा! देखनेवाले को रुदन आवे — ऐसे दुःख सहन किये, प्रभु! परन्तु वर्तमान में जरा यह मनुष्यपना मिला और यह (अनुकूलता) मिली और भूल गया, हो गया। आहाहा! आहाहा! भाई! जन्म-मरण के दुःख इसे मिटाना हो तो उसका एक उपाय यह है कि जिस चीज में जन्म-मरण तो नहीं, जन्म-मरण के कारणरूप भाव तो नहीं परन्तु जिसके द्रव्य में वर्तमान एक समय की पर्याय भी जिसमें नहीं... आहाहा! ऐसा जो स्वद्रव्य अभेद, निर्विकल्प अर्थात् अभेद। निर्विकल्प ज्ञानघन को अन्य नौ के भेदों से भी भिन्न पृथक् श्रद्धा करना, **पृथक् देखना** अर्थात् श्रद्धा करना। अरे! भाषा तो संक्षिप्त परन्तु भाव बापू! (गहरे) हैं। अरे दुःखी है, देखो न! आहाहा! कल-परसों का सुना वह, रिक्शा पन्द्रह बीस हजार का नया रिक्शा लिया और अब कमाने के लिये बैठे सात व्यक्ति, छह युवक और एक लड़की, सब चकचूर, सिर पर बस फिर गयी, चार (युवक) और लड़की तो तुरन्त मर गये। दो को अस्पताल में ले गये, वहाँ मर गये, पूरी पन्द्रह-बीस हजार का (रिक्शा) गया। कमाने के लिए किया था, वहाँ वे सब स्वयं उसमें मर गये। यह दशा तो देखो बापू! आहाहा! ऐसे भव... प्रभु! अनन्त बार किये हैं। उसकी बात नहीं।

श्रोता : पहले मोटर कहाँ थी? वे भव किये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मोटर नहीं थी तो दूसरा था, सब था, उस समय भी था। भगवान के समय में तो ऊपर विमान चलते, देव आते, तब आते थे न वे भी... आहाहा! विद्याधरों के विमान थे, मनुष्यों के थे। आहाहा! अरे! सब कलाबाज चीजें थीं, कुछ नहीं थी क्या? बहुत है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, यह भगवान आत्मा, नव तत्त्व का जो अनादि का जीव के साथ

अजीव और पुण्य-पाप आदि का सम्बन्ध — ऐसे नवतत्त्व का अनुभव, वह तो मिथ्यात्व है; यह सम्यग्दर्शन गुण त्रिकाल है, उससे उलटा वह परिणमन है। सम्यग्दर्शन - श्रद्धा नाम का त्रिकाली गुण आत्मा में है। प्रगट हो, वह उसकी पर्याय है। श्रद्धा नाम का त्रिकाली गुण भगवान आत्मा में एक गुण है, उस गुण का मिथ्यात्वरूप होना, विपरीतरूप परिणमन है, उसे यहाँ मिथ्यात्व कहते हैं। आहाहा! उस मिथ्यात्व के त्याग के लिए... आहाहा! जो भ्रमण का - भव का, भव के भ्रमण का कारण है - ऐसे मिथ्यात्व का नाश के लिए, भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु है, उसे अन्य द्रव्यों से भिन्न श्रद्धान करना। आहाहा! कहो छोटालालजी! ऐसा कलकत्ता में कहीं मिले - ऐसा नहीं है कहीं। आहाहा!

श्रोता : कहीं मिले ऐसा नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है। शब्द थोड़े परन्तु बापू! क्या कहें? आहाहा!

कहते हैं कि मिथ्यात्व — श्रद्धा नाम के गुण का जो विपरीत परिणमन मिथ्यात्व है, वह अनन्त नरक और निगोद के भव का बीज है। आहाहा! यह कहते हैं कि भले ही रागादि हो परन्तु आत्मा राग से और पर से भिन्न है। आहाहा! ऐसा '**अस्य आत्मा**' — विद्यमान वस्तु भगवान आत्मा, यह आत्मा '**ईमाम**' कहते हैं। यह व्यक्ति आया ऐसा कहते हैं न? यह भगवान आत्मा...

श्रोता : 'यह' तो प्रत्यक्ष है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्यक्ष 'यह' प्रत्यक्ष है। आहाहा! **अस्य आत्मानः...** सन्तों की वाणी गजब है! दिगम्बर मुनियों की वाणी तो... आहाहा! उसके समक्ष जगत के विद्वान सब पानी भरे — ऐसी वाणी है! वह यह बात है। आहाहा! लोगों को इसकी महिमा नहीं। समझ में आया? एक '**अस्य आत्मा**' में तो पूरा तत्त्व निर्विकल्प विज्ञानघन को बतलाया है और वह भी प्रत्यक्ष होता है - ऐसा वह आत्मा... आहाहा! क्योंकि उसमें प्रकाश नाम का एक गुण है। आहाहा! उस गुण का गुण क्या? कि स्वसंवेदन में प्रत्यक्ष होना, वह उसका गुण है। मति और श्रुतज्ञान में आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञात होता है, आहाहा! और प्रत्यक्ष जानकर जो श्रद्धा होती है, आहाहा! उसे यहाँ मिथ्यात्व के नाश का कारण और मोक्ष के मार्गरूप कारण — ऐसा सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा!

अन्य द्रव्यों से पृथक् (श्रद्धान करना) एतत् एव नियमात् सम्यग्दर्शनम्.... है ? **एतत् एव नियमात्....** आहाहा ! **वही नियम से....** (सम्यग्दर्शन है,) **एतत् एव.... वही...** ऐसा **एतत् एव...** अर्थात् वही, एतत् अर्थात् वही, आहाहा ! अर्थात् ज्ञायकस्वरूप जो भगवान निर्विकल्प पदार्थ है, उसे परद्रव्य से पृथक् श्रद्धान करना, **वही नियम से सम्यग्दर्शन है....** आहाहा ! महँगा (कठिन) तो है बापू ! बाकी क्या हो ? मार्ग यह है — ऐसा इसका ज्ञान में निर्णय तो करना पड़ेगा न ! फिर बाद में, अनुभव बाद में; पहले तो विकल्पसहित इसे निर्णय में ऐसा लेना पड़ेगा कि यह वस्तु है, वह अन्दर में कोई रागादि के विकल्प से, नव तत्त्व के भेद से भी अभेद निर्विकल्प चीज अत्यन्त भिन्न है। **'एतत् एव', 'एतत् एव'** 'यह' एतत् अर्थात् यह। एव अर्थात् 'ही' यही, यही, आहाहा ! निश्चय से सम्यग्दर्शन है। चिमनभाई ! आहाहा ! इस भव के नाश का उपाय यह है। आहाहा ! यह प्रथम बीज है, फिर ज्ञानी को रागादि हों, अशुभराग भी हो परन्तु उससे उसका ज्ञान पृथक् काम करता है। आहाहा ! समझ में आया ? **वही नियम से...** अर्थात् निश्चय से, यह नियम ही है। यह निश्चय, उसे सम्यग्दर्शन कहना है। देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा और नव तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन नहीं, आहाहा ! वह धर्म की पहली सीढ़ी नहीं। आहाहा !

प्रभु ! तूने तुझे जगत के समक्ष किस प्रकार बतलाया ? यह मैं इज्जतवाला हूँ और पैसेवाला हूँ, साठ वर्षवाला, बीस वर्ष से यह धन्धा किया, उसमें से मेरे बाहुबल से मैंने पैसे इकट्ठे किये — ऐसा तुझे सबको दिखाना है ? आहाहा ! या तुझे स्वयं को देखना है। आहाहा ! मुझे इतना पता है और मुझे इतना आता है — ऐसा तुझे दिखाना है ? या तुझे स्वयं को ही देखना है ? है ? आहाहा ! **वही....** आहाहा ! **एतत् एव - नियम से सम्यग्दर्शन है,....** आहाहा ! तो कोई कहे कि यह तो एक सम्यग्दर्शन की ही बात हुई... उसमें आता है न उसमें ? मोक्षमार्ग तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन है। इस कलश के अर्थ में आता है। मोक्षमार्ग तो तीन हैं और यहाँ तो तुम एक सम्यग्दर्शन की-अनुभव की बात करते हो। क्या कहा ? मोक्षमार्ग तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र — तीन हैं और तुम यहाँ एक मार्ग — पूर्णानन्द का नाथ, उसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान कहकर उसे मोक्षमार्ग कहते हो ? तो बापू ! भगवान तेरी महिमा सुन, नाथ ! तू पूर्णानन्द का नाथ है, उसकी दृष्टि हुई, वहाँ ज्ञान हुआ, उसके स्वरूप का आचरण भी साथ ही है। आहाहा ! हीराभाई ! ऐसी बातें हैं।

श्रोता : यह तो अन्दर की बात हुई न ? क्रिया की बातें तो कुछ आयी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रिया की कही न ? क्रिया का भुक्का उड़ाया न ! राग की क्रिया हुई, वह परद्रव्य की है, इससे (आत्मा से) भिन्न है। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, ब्रह्मचर्य के परिणाम, शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, यह और वह सब राग परद्रव्य है, वह स्वद्रव्य में नहीं है। यह स्वद्रव्य, स्वपने है और परद्रव्यपने नहीं। आहाहा ! ऐसी बातें, कठिन बहुत बापू ! बाहर के सब पीला, हरा, सफेद, ऐसे दिखायी दें, सब उसमें पच्चीस-पचास लाख रुपये और करोड़-दो करोड़ रुपये हुए हों... आहाहा !

श्रोता : रुपये के बिना नहीं चलता।

पूज्य गुरुदेवश्री : रुपये के बिना.... स्वद्रव्य ने परद्रव्य के अभाव से ही चलाया है। क्या कहा ? यह प्रश्न (संवत्) १० की साल में हुआ था, बोटाद में नटूभाई थे, नागरभाई के बड़े भाई वे स्वामी नारायण (पंथ के) थे, और यह थे नागरभाई भी, फिर तो सब प्रेम से आते थे। १० की साल में म्युनिसिपालिटी में व्याख्यान चलता था, उसमें उन्होंने यह प्रश्न किया था, व्याख्यान में (पूछा था) महाराज ! परन्तु कहीं पैसे के बिना चलता है, यह सब्जी लाना... भाई ! तुम एक बार यह बात सुनो। वैसे स्वामी नारायण पालते परन्तु फिर तो इस ओर प्रेम हो गया, बाद-बाद में परिवार को सबको अभी तो सबको प्रेम है। इस ओर उनके नानाभाई तो यहीं रहते थे।

भाई, इस अंगुली ने इस अंगुली के बिना चलाया है। इसके अभाव से यह वस्तु है, इसके भाव से है और इन सबके अभाव से है। इसी प्रकार आत्मा स्वयं अपना अन्दर भाव, स्व से किया है और पर के अभाव से किया है।

श्रोता : यह तो रीति बतायी परन्तु इसे अमल में कैसे लाना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अमल में लाना अन्दर में श्रद्धा-ज्ञान करना वह (अमल में लाना है)। स्वद्रव्य में परद्रव्य के अभाव से स्वद्रव्य टिक रहा है। आहाहा ! अरे ! जिसमें एक समय की पर्याय भी नहीं — ऐसा द्रव्य स्व से टिक रहा है। उसे पर्याय है, इसलिए वह द्रव्य टिक रहा है — ऐसा भी जहाँ नहीं। आहाहा। ऐसी बात !

श्रोता : (ऐसी बात) कहीं नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! बापू! यहाँ तो श्वेत... श्वेत... पीले घूमे ऐसे शरीर, ऐसा पैसा, इज्जत और पचास-पचास-साठ वर्ष की उम्र हुई हो न (तो) मानो बहुत किया हो, ऐसा ऐसे धन्धे किये और हमने ऐसा किया.... धूल भी नहीं किया, किये हैं सब पाप के नरक में जाने के हैं। किये हैं वे नरक में और निगोद में जानेवाले हैं सब। अेय...! तुम्हारा आया है न? भतीजा फकीरचन्द! आहाहा! पर के बिना चलता नहीं — ऐसा जो कहनेवाला है, उसे परमात्मा की ऐसी पुकार है कि पर के अभाव से ही तू निभ रहा है; पर के बिना ही तूने चलाया है। आहाहा! तू जो स्वपने है वह परपने अभावरूप ही तूने तेरा निभाया है। पर की अस्ति से तूने तेरा निभाया है — ऐसा नहीं है। धन्नालालजी!

श्रोता : रोज सब्जी लाने के लिए रुपये चाहिए या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सब्जी लावे और कौन दे? आहाहा! सब्जी तो लड़कों को भी मिलती है, छोटे बालक को भी (मिलती है), उसके पास कहाँ पैसा है? आहाहा! परन्तु वह तो अभावस्वरूप है। सब्जी और पैसे के भाव में आत्मा नहीं है और अपने भाव में वे नहीं हैं। आहाहा!

अरे! इसे अपना पता कहाँ है? सप्तभंगी में पहली भंगी यह है (कि) स्वपने है, और परपने नहीं। आहाहा! परपने नहीं; इस प्रकार ही इसने निभाया है। पर है, इसलिए स्वयं भी परपने है — ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? सब बातों में अन्तर है, बापू! पता है न हमें तो.... सब पूरी दुनिया जानी है, अरबोंपति से लेकर रंक, गरीब मनुष्यों को देखा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

श्रोता : वकालात हुई?

पूज्य गुरुदेवश्री : वकालात भी उस प्रकार की — धन्धे की की थी, दुकान में (की थी) पाँच वर्ष दुकान चलायी थी। १७ वर्ष की उम्र से २२ वर्ष (तक) चलायी थी परन्तु यह तो ६६ वर्ष पहले की बात है। कल हमारे पालेजवाले आये थे, श्वेताम्बर थे गये होंगे कुछ होगा, पालीताना (में) पालेज और मियाँगाँव दोनों गाँववाले आये थे, हमें तो पहचानते हैं न, हमारी दुकान वहाँ थी न! अभी दुकान है और अभी हमारे कुँवरजीभाई की, हमारे भागीदार थे, बुआ के लड़के, उनकी दुकान है। बड़ी दुकान है, तीन लड़के हैं, ३५-४० लाख रुपये हैं, तीन-चार लाख की आमदनी है। धूल की आमदनी है। भटककर

मरनेवाले हैं सब। आहाहा! उस दुकान में मैं था, मेरे पिताजी की दुकान थी। गद्दी पर मैं बैठता, भागीदार न हो तब मैं बैठता, भागीदार हो तब मैं अन्दर में अपना अध्ययन करता था। मैं तो पहले से — १८ वर्ष की उम्र थी (तब से अध्ययन करता था) श्वेताम्बर के शास्त्र - स्थानकवासी थे न! श्वेताम्बर के शास्त्र पढ़ता, घर की स्वतन्त्र दुकान थी। अरे...रे! वह स्वतन्त्र नहीं, बापू!

स्वतन्त्र तो यहाँ भगवान जो निर्विकल्प अभेद वस्तु है, वह स्वतन्त्र है। आहाहा! और उसमें प्रभुत्व नाम का एक गुण है। भगवान आत्मा में ध्रुव, नित्य... आहाहा! उसे परद्रव्य से पृथक् मानने पर उसकी मान्यता में प्रभुत्वगुण की पर्याय भी आती है। आहाहा! उस सम्यग्दर्शन में — श्रद्धागुण की पर्याय में प्रभुत्वगुण की पर्याय भी अन्दर आती है। अनन्त पर्यायों का पिण्ड वह अन्दर सम्यग्दर्शन.... आहाहा! उस सम्यग्दर्शन में ईश्वरता आयी। मेरी स्वतन्त्रदशा, मैं स्वतन्त्ररूप से माननेवाला, मेरी पर्याय भी स्वतन्त्र है; किसी की अपेक्षा से नहीं। मेरी पर्याय को कोई हेतु नहीं, इसलिए उत्पन्न हुई है। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन की पर्याय, उस समय में पर की अपेक्षा रखे बिना, मात्र स्वद्रव्य के लक्ष्य में था इतना! वह सम्यग्दर्शन की पर्याय को पर की कोई अपेक्षा नहीं है कि यह व्यवहार था, और देव-गुरु को माना, इसलिए सम्यग्दर्शन हुआ (— ऐसी अपेक्षा नहीं है)। इस कारण अन्य द्रव्य से पृथक् कहा है। अन्य द्रव्य की सहाय और निमित्त से (सम्यग्दर्शन आदि) होते हैं — ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा!

कैसा है आत्मा? **अपने गुण-पर्यायों में व्याप्त रहनेवाला है,....** यह क्या कहते हैं? समुच्चय बात है अभी पहले। आत्मा जो वस्तु है, वह अपने गुणों और विकारी-अविकारी पर्यायों में व्याप्त रहनेवाला है, इतना ही.... अभी तो अस्तित्व सिद्ध करते हैं। इसमें से शुद्धनय ने भिन्न बताया — ऐसा कहते हैं। यह क्या कहा? जो वस्तु - भगवान आत्मा है, उसके जितने गुण हैं और जितनी उसकी पर्यायें हैं - विकारी-अविकारी (पर्यायें हैं), वह द्रव्य स्वयं गुण-पर्याय में व्यापक है, पर में नहीं; पर में नहीं, पर के कारण नहीं। अपने गुण जो ध्रुव-त्रिकाल और वर्तमान प्रगट होनेवाली विकृत या अविकृत पर्याय (है) उनसे गुण-पर्याय में ही वह वस्तुरूप से रहा है।

अभी विषयरूप से (बात है) शुद्धनय का (विषय) इसके बाद बताते हैं। यह तो

वस्तु ऐसी है कि जिसे पर में व्यापकपना तो है नहीं; पर से अपने में व्यापना — ऐसा नहीं है। आहाहा! अर्थात् ? विकारी अवस्थारूप आत्मा परिणमता है व्यापक, वह स्वयं से परिणमता है, उसे किसी दूसरी चीज है; इसलिए विकाररूप परिणमता है — ऐसा नहीं है। आहाहा! वह स्वयं ही गुण-पर्याय में परिणमित होनेवाली वस्तु भगवान.... आहाहा! भले विकाररूप परिणमे परन्तु स्वयं, द्रव्य स्वयं, द्रव्य स्वयं गुण और पर्याय में व्यापक है। उसमें कोई अन्य द्रव्य व्यापक है, आया है, पसरा है (- ऐसा नहीं है)। आहाहा! बापू! वीतराग का मार्ग! आहाहा! अलग प्रकार है, भाई! आहाहा! इसे पहले परद्रव्य से भिन्न बतलाया, यहाँ तो अभी। गुण-पर्याय में व्यापक है, इसमें, अभी तो विकार में व्यापक है, गुण में रहता है - ऐसा बतलाया। इसके अतिरिक्त जितने परद्रव्य हैं, उनमें यह व्यापक नहीं है — ऐसा यहाँ सिद्ध किया है।

अब यहाँ परमार्थ बतलाने को.... आहाहा! **अपने गुण-पर्यायों में व्याप्त रहनेवाला, और....** कैसा है ? इसमें से जो भगवान आत्मा वस्तु है, उसके त्रिकाली गुणों में रहता है और उसकी वर्तमान पर्याय में है। इतनी बात सिद्ध की। अभी सम्यग्दर्शन और वह बाद में कहेंगे।

अब इसे **शुद्धनय से एकत्व में निश्चित किया गया है....** आहाहा! यह वस्तु स्वयं त्रिकाली गुण में और वर्तमान पर्याय में रहती है, व्यापक है, पसरी है। गुण-पर्यायरूप हुई है — ऐसे आत्मा को **शुद्धनय** से, अर्थात् निर्विकल्प वस्तु की दृष्टि से देखें तो... आहाहा! **एकत्व** में व्यापक है — **निश्चित किया गया है।** एकरूप त्रिकाल है, उसके गुण और पर्याय के भेद भी जिसमें से निकल गये हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

(यहाँ) दो बातें कही कि एक तो अन्य द्रव्यों से भिन्न है, यह तो वस्तु का स्वरूप, पहले सम्यग्दर्शन का विषय बताया... परन्तु फिर भी वह वस्तु है, वह अपने गुण-पर्याय में व्यापक है, वह वस्तु भले कर्म के निमित्त के सम्बन्ध से विकारी पर्याय स्वयं से हुई और उसमें वह व्यापक है। इतना तो उसका द्रव्य और पर्याय का पर से भिन्नपना इतना सिद्ध किया। अभी अब उसमें से, जो गुण और पर्याय में व्यापक रहनेवाले भेद में है, उसे **'शुद्धनयतः एकत्वे नियतस्य' शुद्धनय से एकत्व में निश्चित किया गया है....**

आहाहा! परन्तु उसे भेद के भाव से भिन्न, एकपना — त्रिकाली है, उसे शुद्धनय से एकरूप बताया है। समझ में आया? ऐसी चीज है, देवीलालजी!

परद्रव्य तो दूसरी चीज है, उपस्थित है — इतना है और स्वयं अपने अनन्त गुणों में तथा उनकी पर्यायों में, नैमित्तिक-विकारीदशा, उसमें वह स्वयं व्यापक है, रहता है। उसका पूरा स्वरूप इस प्रकार कहा। समझ में आया? अब उसमें से....। आहाहा! निर्विकल्प एकरूप वस्तु जो शुद्धनय ने बतायी है, उसमें यह भेद नहीं है।

श्रोता : द्रव्य, गुण, पर्याय और सब भेद एकमेक में होंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन, यह कहा न, इतनी वस्तु है इतना। अब इस शुद्धनय का विषय क्या? यह तीन नहीं, यह तो एक चीज बतायी कि यह वस्तु जगत से निराली, अपने गुण-पर्याय में व्याप्त, बस इतना! अब उसमें शुद्धनय अर्थात् निर्विकल्प चीज क्या है? ऐसे प्रकार में रहने पर भी, निर्विकल्प विज्ञानघनस्वरूप जो है, वह एकरूप है, वह यह वस्तु है। आहाहा!

बापू! यह तो अलौकिक मार्ग है! यह तो अपूर्व बातें हैं। पूर्व में कभी सुनी नहीं और सुनी हो तो इसे जँची नहीं। आहाहा! सुनी नहीं — ऐसा ही कहा है। (समयसार) चौथी गाथा में (कहा है)। राग से पृथक् प्रभु है, यह बात तूने सुनी नहीं। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, और यात्रा का भाव, यह तो राग है। इसमें यह (आत्मा) व्यापक है, यह पर्याय से; वस्तु दृष्टि से देखें तो उनसे यह भिन्न है। आहाहा! इसकी वस्तुरूप से देखें तो इसकी पर्याय में राग है परन्तु अब जब अखण्ड वस्तु देखें तो, निर्विकल्प वस्तु में वे गुण के भेद और पर्याय के भेद निर्विकल्प अभेद में नहीं हैं। यह शुद्धनय का विषय निर्विकल्प -अकेली चीज है। आहाहा! जो '**अस्य आत्मनः**' कहा था वह। आहाहा! केवलियों का विरह पड़ा परन्तु केवली की वाणी सन्तों ने रखी है। इस वाणी का भाव समझना बहुत अलौकिक बात है। वाणी तो जड़ है, वह तो नहीं कहती कि मेरा यह स्वरूप है। ऐसा वाणी कहेगी? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन। दो अस्तित्व सिद्ध किये — एक तो तू स्वयं गुण और पर्याय में व्याप्त है - ऐसा भी तू है। अब इससे पर से तो भिन्न; पर में तो व्याप्त नहीं और पर से तो तू तुझमें व्याप्त है — ऐसा भी नहीं। समझ में आया? आहाहा! मिथ्यात्व

और राग-द्वेष की पर्याय में परिणमित व्याप्त... आहाहा! तू उसमें आया है, व्याप्त तू है। अब उसमें से अभेद वस्तु जो सम्यग्दर्शन का विषय, शुद्धनय का विषय है.... पूर्व कथित तो प्रमाण का विषय कहा था। अब उसमें से जो प्रमाण है, वह पूज्य नहीं है। उसमें निश्चयनय पूज्य है। उस निश्चयनय का विषय तो निर्विकल्प वस्तुमात्र स्वयं (है)। उसमें यह गुणी और यह गुण — ऐसा भेद भी जिसमें नहीं है। बापू! यह तो मार्ग है। यह कोई बनियापन नहीं की यह थोड़ा बाहर में बड़ा हो गया, सेठ हो गया और हो गया यह.... ऐय सेठ? नानावटीपणा चलाया और ऐसा किया और वैसा किया सामने... आहाहा! पच्चीस-पचास इसे नौकर... इसे धूल में भी नहीं, बापू! सब भूतावल है।

श्रोता : धूल में नहीं परन्तु पैसे में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा धूल नहीं है तो क्या है वह? मिट्टी का पिण्ड है, पृथ्वीकाय है। आहाहा!

एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रियपना, वह व्यवहारनय से है। पैसावालापना तो इसमें व्यवहारनय से भी नहीं है। वह तो असद्भूतनय से मानता है, माने। वह तो इसमें है एकेन्द्रिय, दोइन्द्रियपना, तथापि वह जीव नहीं है। जीव तो अन्दर ज्ञानस्वरूप, वह जीव है, क्योंकि एकेन्द्रियपना यदि जीवस्वरूप होता तो कायम रहना चाहिए। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, मनुष्य, देव, पशु, नारकी... आहाहा! यह कोई जीव नहीं, पर्याय में है परन्तु यह जीव नहीं। जीव तो अकेला ज्ञानस्वरूप है, वह जीव है। आहाहा! समझ में आया?

अपने गुण-पर्याय में व्याप्त है, तथापि अब शुद्धनय से **एकत्व नियतस्य — शुद्धनय से** तो **एकत्व में निश्चित किया गया है।** आहाहा! भूतार्थनय से त्रिकाली सत्य वस्तु को देखनेवाले-जाननेवाले के नय से वह तो त्रिकाली एकरूप है, वैसा प्रसिद्ध किया है। आहाहा! बात तो ऐसी है, भाई! यह कोई वाद-विवाद, इसमें शास्त्र का पढ़ा बड़ा पण्डित हो और यह बात बैठे, ऐसा नहीं है।

श्रोता : वाद-विवाद करने से तो नियमसार में इनकार किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नियमसार में तो निषेध ही किया है बापू! ज्ञाननिधि को पाकर अकेला खाना (भोगना)। स्वसमय और परसमय में वाद मत करना, बापू! ऐसी कोई

चीज है। वह ऐसी चीज है कि उसे अब अनेक अपेक्षा से देखने पर व्यवहार की बातें वीतराग ने की है, वह भी संसार का कारण है। अब, तू किस प्रकार (निश्चित करेगा) भाई! आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा.... एक तो यह सिद्ध करते हैं कि यह आत्मा है वह प्रमाण -पूरा द्रव्य और पर्याय.... इस शरीर में व्यापक नहीं, कर्म में व्यापक नहीं परद्रव्य में व्यापक नहीं, यह व्याप्त हो तो इसके गुण और पर्याय में व्याप्त है, बस इतना! समझ में आया? आहाहा! अब इसे परद्रव्य में व्याप्त नहीं और अपने गुण-पर्याय में व्याप्त है, यह तो प्रमाण का विषय हुआ, परन्तु अब शुद्धनय का विषय इन्हें इसमें से बताना है। आहाहा! एकरूप निर्विकल्प वस्तु जो शुद्धनय का विषय है, जो सम्यग्दर्शन का विषय (है)। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय द्रव्य और गुण, पर्याय में व्याप्त द्रव्य, वह विषय इसका है ही नहीं।

श्रोता : वह प्रमाण का द्रव्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! अपने गुण में, पर्याय में व्याप्त होने पर भी, **शुद्धनय से एकत्व में,... शुद्धनयतः एकत्वे नियतस्य...** निर्विकल्प विज्ञानघन को शुद्धनय ने बतलाया, गुण और पर्याय में व्याप्त वह वस्तु का प्रमाण है परन्तु सम्यग्दर्शन का विषय और शुद्धनय से उसे देखने पर वह एकरूप वस्तु है। समझ में आया? ऐसी बातें! उपदेश सुनना कठिन पड़े और यह तो कहाँ का उपदेश होगा, भगवान का होगा? वह यह? अरे बापू! इसने सुना नहीं भाई! वीतराग जिनेश्वरदेव का उपदेश कैसा होता है, भाई! वह तो अलौकिक बात है। आहाहा!

शुद्धनय से एकत्व में व्यापक है और कैसा है? यह तो समुच्चय कहा। अब कैसा है? **पूर्ण-ज्ञान-घनस्य.... पूर्ण ज्ञानघन है।....** एकरूप से निश्चित किया गया परन्तु अभी वह क्या चीज है तब? कि पूर्ण ज्ञानघन है। पूर्ण ज्ञान का पिण्ड है, अकेला अभेद (है) उसके साथ अनन्त गुण साथ लेना। ज्ञान की प्रधानता से बात की है। पूर्ण ज्ञान! पर्याय भी नहीं। आहाहा! पूर्णज्ञान... पूर्णज्ञान... पूर्णज्ञान... जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा, पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्रमा, पूर्णिमा क्यों कहते हैं सुना? पूर्णिमा पूरा चन्द्र, पूरा प्रगट हुआ है; इसलिए पूनम कहते हैं। पूनम में महीना पूरा होता है और अमावस्या में महीना अर्द्धमास होता है, अमास - अर्द्धमास। यहाँ काठियावाड़ में दूसरा रिवाज है, शुक्ल एक से शुरु करते हैं।

सिद्धान्त तो कृष्ण एकम् से शुरु करता है। पहले कृष्ण और फिर शुक्ल, क्योंकि पन्द्रह दिन तो अमावस आती है, वह तो अर्द्धमास हुआ और पूर्ण में पूरण पूनम, चन्द्र भी वहाँ पूर्ण हो गया। सोलह कलाओं से खिल निकला है, एक कला तो सदा ही उसकी खुली हुई होती है। समझे ? आहाहा! दूज को तीन कला होती है, एकम् को दो, दूज को तीन, पूर्णिमा को पूर्ण। इसी प्रकार भगवान आत्मा वस्तुरूप से पूर्ण विज्ञानघन है। जिसमें अपूर्णता नहीं, विपरीतता नहीं, अशुद्धता नहीं, अल्पता नहीं, आहाहा! प्रत्येक शब्द में वाच्य है, वह इसे जानना चाहिए भाई! आहाहा! यह कोई विद्वत्ता का विषय नहीं है, विद्वानों को या दूसरों को समझा सकें, इसलिए ऐसी (चीज) यह नहीं है बापू! यह चीज तो कोई अलौकिक है। आहाहा!

इस पूर्ण ज्ञानघन शब्द से एक ज्ञान को ही पूर्ण लिया परन्तु उसके साथ अनन्त गुण पूर्णरूप हैं, एकरूप हैं — ऐसा यह भगवान है। समझ में आया ? **'तावान् अयं आत्मा' तावान् - जितना सम्यग्दर्शन है उतना ही आत्मा है,....** आहाहा! पूर्ण वस्तु है, उसकी अनुभव में प्रतीति हुई तो वह तो वस्तु ही पूर्ण है, उस अनुसार। आहाहा! जो अनादि से कर्मचेतना, और कर्मफलचेतना का जो वेदन था, वह मिथ्यात्व था। समझ में आया ? राग और राग के फल का जो वेदन, एकान्त से दुःखी और दुःख का वेदन था। सम्यग्दर्शन होने पर उसे ज्ञानचेतना प्रगट हुई... आहाहा! इससे वह आनन्द के वेदन में आया, अब ऐसी शर्तें। समझ में आया ?

एतत् सम्यग्दर्शन.... आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ का जहाँ दर्शन हुआ, और उसके साथ ज्ञान हुआ और उसके साथ आनन्द का वेदन.... आहाहा! अर्थात् साथ में चारित्र आयेगा, आहाहा! समझ में आया ? कर्मचेतना, कर्मफलचेतना का अनादि से अज्ञानी को वेदन है। आत्मा का-ज्ञानचेतना का वेदन है ही नहीं। आहाहा! इससे जहाँ पूर्ण ज्ञानघन है - ऐसा जहाँ भान हुआ, उसकी पर्याय में ज्ञानचेतना-शान्ति के आनन्द के वेदनवाली चेतना प्रगट हुई। आहाहा! मिथ्यात्व में अकेले दुःख का वेदन था। (आत्मा) पूर्ण ज्ञानघन है - ऐसा जहाँ सम्यग्दर्शन उसके (स्वभाव के) आश्रय से हुआ, उसमें ज्ञानचेतना - जो ज्ञान, ज्ञान में एकाग्रता होकर उसके साथ आनन्द का वेदन हुआ, इसलिए इस दर्शन में तीनों आ गये - ऐसा मेरा कहना है। समझ में आया ?

सम्यग्दर्शन – पूर्ण की प्रतीति, पूर्ण के ज्ञान को, पूर्ण के ज्ञान के साथ वेदन। आहाहा!

श्रोता : सर्व गुणांश वह समकित।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्व गुणांश वह समकित परन्तु यह तो अभी तीनों का तो काम है और सम्यग्दर्शन में यह प्रश्न है न? उन्हें, अभी ऐसा कि तुम सम्यग्दर्शन की बात करते हो और मोक्षमार्ग तो तीन हैं। बात सत्य बापू! हम तीन से इनकार नहीं करते। आहाहा!

पूर्ण ज्ञानघन प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द से पूर्णघन प्रभु ....यह तो ज्ञान से पूर्ण कहा परन्तु ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द से पूर्ण घन प्रभु, अतीन्द्रिय प्रभुत्वशक्ति से पूर्ण घन प्रभु — ऐसी अनन्त शक्ति से पूर्ण वस्तु प्रभु! आहाहा! भाई! उसका सम्यग्दर्शन और ज्ञान होने पर, चेतना भी पलट गयी। जो कर्मचेतना और कर्मफलचेतना थी, वह ज्ञानचेतना हो गयी, वेदन पलट गया। समझ में आया?

भले अभी थोड़ा राग है, उसे वेदन है परन्तु वह गौणरूप से गिनने में आया है। ज्ञान की पर्याय से देखना हो तो दोनों साथ हैं। आनन्द का वेदन भी है और साधक है, इसलिए अभी राग का भी वेदन है; ज्ञान से देखें तब ऐसा कहते हैं। दर्शन की प्रधानता से कथन आवे तब उसे आनन्द का वेदन मुख्यरूप से है — ऐसा कहते हैं। आहाहा! **इतना ही वह आत्मा है,** फिर देखा! सम्यग्दर्शन में पूरा आत्मा आया है। सम्यग्दर्शन है, वह पूरा आत्मा है। विशेष बात कही जायेगी। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)